...कि जीवन ठहर न जाए

बोधि प्रकाशन
जयपुर

लोकार्पित




राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित



प्रकाशक . बोधि प्रकाशन
5/356, एस एफ.एस., अग्रवाल फार्म,
मानसरोवर, जयपुर-302 020 (राजस्थान)
दूरभाष : 0141-398926
वितरक : लोकायत प्रकाशन
883, लोधो की गली,
मोती डूगरी रोड
जयपुर–302 004
दूरभाष : 0141-600912
मूल्य : 60 रुपये मात्र
आवरण : मेधातिथि
लेजर टाईप सैट : बोधि कम्पयूटर ग्राफिक्स, जयपुर के लिए योगेश कुमावत व सतीश कुमार सोपरा द्वारा
मुद्रक : कमला आर्ट प्रिन्टर्स, जयपुर

ki jeevan thahar na jaye (poetry) by mayamrig
Rs. 60/-

-

# अनुक्रमणिका

•

---

हजार-हजार
भाव-मछलिया
आतुर
पहुँचने को
तुम तक
पहुँचेंगी

जरा धीरज रखो
देखो –
अपने भीतर का पानी
टो कर देखो –

मरा तो नहीं
मेरी मछलियां
तुम तक पहुँचकर भी
मर जाएंगी
अन्यथा।

(श्याम सुशील की कविता 'मछलिया')

---

## ट्रैफिक पुलिस का सिपाही

ट्रैफिक पुलिस का
वह सिपाही
अपने साफ-सुथरे और
चमाचम सफेद कपड़ों में
शहर के व्यस्त चौराहे में
सड़क से कुछ ऊँचा खड़ा
आने-जाने वालों को
अपने संकेतों से बताता रहता है
कि किसे कब रुकना है
और कब– गति बढ़ाकर

आगे बढ जाना है।

उसकी नजर से नहीं छिपता
कौन गलत बढ रहा है
और संकेत से ही
समझा देता है कि
एक रुका नहीं—और
दूसरा चल पडा— तो
दोनों टकराकर गिरेंगे।

जब तक शहर
चकाचौंध मे अंधा रहता है,
वह पल-पल रोककर
उन्हें बताता है
कि चलने के लिए
रुकना कितना जरूरी है ?

ट्रैफिक पुलिस का एक सिपाही
जब अपनी जगह
दूसरे सिपाही को सौंपकर
घर चला आता है तो—
पाता है
कि उसके घर में
कहीं कोई भागदौड़ नहीं है।

शहर की कोई भीड़ भरी सड़क
उसके घर तक नहीं आती।

भीतर के ताले खोलता है
और बत्ती जलाकर
उन हाथो को देखता है,
जिनसे वह
गति के नाम पर हो रही
अनथक भागदौड को
कुछ पल विराम देता है।
उसे–
अपने सधे हाथों के संकेतो पर
अटूट भरोसा है–
परन्तु
सारा दिन खड़े हाथों की थकन से
वह– झाड़ू भी नहीं लगा पाता
भीतर के कमरे में–।
जहा दिन-प्रति जाले
जमते ही जा रहे हैं;
दीवारें–
छत से सीधी ही जा मिली हैं
संधियां तो–
धूल भरे जालों से ढप गई हैं।

हॉर्न के चीखो-पुकार सुनते-सुनते
उसके कान– अघा गए हैं,
या कि सुन्न होकर– बस
लटके से रह गए हैं
इसीलिए उसे

सुनाई नहीं देता
कमरे के भीतर– सन्नाटे का
खौफ़नाक पर सच्चा संगीत।
साय-सायं, भांय-भांय
घुल गई है पौं-पौं, पीं-पीं में।

वह यूं ही चुपचाप बढता है,
स्टोव जलाकर सन्नाटा तोडता है।

केरोसिन के धुएं मे
मंद होने लगती है कमरे की बत्ती
और
जमने लगते हैं जालो पर जाले।

वह क्या करे ?
वह कैसे करे कि पहले
सारा दिन सबको सम्भाले
और हर रात
खुद को टटोले– खाते खोले/मिलाले।

शुक्र है कि
कमरे की धूल और जालों का
कोई निशान– उसकी वरदी पर
लोगो को कभी नहीं दीखता।

•

## सपनों का शस्त्रीकरण

एक था सपना ।
दूसरा था सपना ।
दोनों लड़ रहे थे ।

मैदान चुप था/क्योंकि
वह समझा रहा था
सपनों को— शान्ति का अर्थ ।

एक सपने के हाथ में
तलवार थी ।
तलवार का लोहा
बहुत चमकीला था/और
धार— धारदार थी।
लोहा— पहले बहुत काला था
मिट्टी-सना भी था
पर सपने ने— दोनों हाथो से
पत्थर पर रगड-रगड
बहुत चमका लिया था ।

दूसरे सपने के हाथ में
एक तलवार थी—
पर उसने
तलवार से पहले
ढाल बनाई थी—
जो अब तक बहुत काली थी।
कालापन रात से आया था
क्योंकि धरती घूम गई थी
सूरज पिछवाड़े गिर पड़ा था
और—
कछुए की पीठ
पहले थोड़ी लम्बी-चपटी थी

पर— धीरे-धीरे गोल हो गई
कछुआ— अपने पैरों को

पीठ की खाल नीचे
सिंकोडना जानता था ।

मैदान पर दोनों सपने लड रहे थे ।
सपनों में शब्द नहीं थे,
सपनों में अर्थ नहीं थे,
सपनों के पास हथियार थे ।
देर तक युद्ध चला—
दोनों लहू-लुहान हो गिर पड़े
मैदान के बीचों-बीच ।

मैदान के पास— कच्ची मिट्टी थी
उसने कोई तलवार नहीं बनाई,
ढाल भी नहीं ही बनाई ।
सपने मर गये
मैदान हार गया ।
सपनों का मरना
तुमने भी देखा— और तुमने भी
तुम चुप रहे— तुम चुप रहे— ।
मैदान का हारना मैंने देखा
मैं चीखूंगा— मैं चीखूंगा !

•

## जीने और जी सकने के बीच

अनंत फैला सागर
तुम्हारे पास था
और— मेरे हिस्से में आया

प्यास का कुआँ।
नेह का जल बांटते हुए
हर बार
मेरी प्यास की परिभाषा
तुमने खुद की।
तुम्हारे पुचकार भरे होठों से
निकली गोलाइयां
परिधि माप कर खींची गई।

बडी परवाह से
मुझे सिखाई गई
लापरवाही।

नैतिकता का देवरथ
जो उतारा गया– आसमान से
उसका
सबसे आखिरी पहिया
मेरे माथे के
बीचों-बीच टिका।
असुरों ने उछल-उछल कर
कब्जाया देवरथ
और पहिये गड्ढों में धचक गये।

तब भी– मैं
तुम्हारे
उपकार तले दबा
कराहता रहा।

इस बीच— तुम
मेरी कराह के
समानार्थी उदाहरण
शास्त्रों मे ढूंढते रहे।

मेरे जीवन की कविता
तुम्हारी वैयाकरण का
बोझ तौलती रही—।

मै ठीक से जानता हूँ— कि
मेरे घर मे घर नहीं है,
पर
इन्कार नहीं पा रहा हूँ
तुम्हारी,
बैकुण्ठ की परिभाषा।

ओ उत्तेजित दार्शनिक।
तुमने सागर तो देखा,
गहराई तो देखी,
पर जल मे घुले
नमक और रेत का स्वाद
तुम्हारी जीभ पर
कभी नहीं आया!

•

# भग्नेश

नगाड़ची मन्दिर
बुढाया बरगद।
घिसियाये चेहरे,
लटके मुँहवाले पुजारी
मुरझायी आँखो वाली औरतें,
थुथलाये जिस्म
भक्ति में औंधे पड़े
आर्तनाद करते हैं।

स्कूली बच्चे

घण्टियां बजाते हैं
और—अभ्यास दोहराते हैं
सरकारी स्कूल मे काटे
सड़ियाये दिनो का।

गोरे सपनो वाली— काली लड़कियां
प्रदक्षिणा देती हैं—और
एक पतझर के नाम का
एक घड़ियाली टनका बजाती हैं।
चेताती हैं—अनगढ मूर्ति को
और—
मिचमिचाती आँखो में
जाग उठता है
कमलों भरा तालाब।
बरगद जानता है
तालाब में
तल तक— कीचड़ है

नगाड़े ढमढमाते हैं,
पीतल की छोटी-बडी घण्टिया
घनघनाती हैं,

बहुत सारे जिस्म, एक साथ हिलते हैं,
झूमते सिर— चक्करघिन्नी खाते हैं
और धड़ाम् से
नगाड़े पर जा पड़ते हैं।
घर्राटे के साथ

उच्चरित होते हैं
खरखराते मंत्र।
बरगद जानता है
पर चुप रहता है।
उसकी डालों पर झूलते बन्दर
जोर-जोर से किट्किटाते हैं,
स्वरों के साथ– पीटते हैं तालियां
और
मन्त्रों के राज को
सार्वजनिक करते हुए हँसते हैं।

पुजारी की
त्यौरियां चढ़ जाती हैं,
भक्तों की गर्दनों पर
श्रद्धा का वजन और बढ़ जाता है।
आर्ती के बाद
पुजारी
ताला लगाकर मन्दिर को–
घर चला जाता है।

तब–
आधी रात के सन्नाटे में
बूढ़ा बरगद हँसता है।
जोर-जोर से हँसता है!



## पगडंडी से सड़क तक

पगडंडी
रोज कराहती है।
सुबह से शाम तक
किसी आहट की इंतजार में
अपने टेढे-मेढे
कच्चे-गलते शरीर को
रोज निहारती है।
पर नहीं आता कोई
कान्धे पर हल रखे
गुनगुनाता,
कूदता-फांदता
कोई भी रसीला क्षण!
कोई भी पल
नहीं देता उसे
सुवासित कल की गंध!
विरहणी सी
रात-रात भर
करवटे बदलती है—

इसे देख
अब कोई नहीं कहता
पगडंडी चलती है।
सड़क
रोज चीखती है।
सुबह से शाम तक
भीड़ के रेले
वाहन-ठेले
हॉर्न के शोर
और कील वाले बूटों की
ठक्-ठक्
अपनी छाती पर झेलते
भीतर ही भीतर
टीसती है।
पर नहीं आता
कोई भी पल,
जब वह मिल ले
अकेली अपने आप से।
धूल-धूप-धुँआं
सूंघते-फाकते
नसें तनने लगी हैं,
सब कहते हैं
सड़क
बहुत चलने लगी है!

•

## सभ्य शहर में

गाँव से आया था, शहर
गर्व लेकर–
पं. चिरंजीलाल वेदपाठी के कुल का
कुलदीपक होने का गर्व लेकर।
सारा गाँव जानता था
मैं माथे पर सूरज लेकर पैदा हुआ हूँ,
यह साक्षी था– मैं साधारण नहीं हूँ।

यही असाधारणता– असामान्यता बन गई।

आवाज का ओज अशिष्टता कहलाया,
भीतर की ऊर्जा अक्खड़पन।
दादा चिरजीलाल वेदपाठी के
सिद्धान्तों की पालना से मूर्ख ठहरा,
तो गाँव माणकसर के पहनावे से असभ्य!

चलने से लेकर बैठने तक,
बोलने से लेकर सीखने तक की वैयाकरण
क ख ग. से सीखनी पडी
माथे पर पागलपन की तरह सवार गर्व
पिघलकर बह गया–
सड़के कुछ और रपटीली हो गईं–।

जिन पर
कभी गर्व को समेटने की
तो कभी रास्ते को नापने की
कोशिश मे– फिसल रहा हूँ।
इस फिसलन को
पहले दिन हुये– हफ्ते
फिर महीने– साल–।
...और अब तो
सदियां बीत गईं!

•

## अपने से

लौट जाओ—
वह नरक ही सही
तुम्हारा अपना है।
जहाँ तुम
अपनी पीडाओं के
अकेले साक्षी हो।

जिस सन्धान मे आए थे तुम
निष्फल हुआ वह प्रयास—।
उत्तेजित दार्शनिको की
तीक्ष्ण बुद्धि में
तुम करुणा के पात्र नहीं हो,
विश्लेषण के उपकरण हो—।
तुमसे ही
क्रमश मिलता है उन्हें
विशिष्ट होते जाने का

नग्नछद्मी गर्व–।

तुम्हारे
नारकीय जीवन के कारणों का
सजावटी लेखा-जोखा रखकर ही
पोषित होगी
उनकी तर्कैषणा–।

जो
स्वयं तुमसे
अपने यौद्धिक यंत्रों का
ईन्धन तलाशते हैं
उनसे अपनत्व की कामना छोड़
और– लौट जा !
जिस दिन–
अपने से ही मिले रास्ता

निकल भागना–।
वरना–
रास्तों का विश्लेषण करती
अभियंताई बुद्धि से
तुम
नीले नक्शों के अलावा
और पा ही क्या सकोगे ?

•

## आत्मकथा की भूमिका

आने वाले कल के लिए
आज का चित्र छोडना जरूरी भी है,
मजबूरी भी।
कोई तो डोरियां होनी ही हैं,
कि जिन्हे थाम-थाम
युग को उबरना है!

युग तो कुएँ में रहता है—
व्यवस्था के जल में मेंढक सा!
मैं ईमानदारी से कहता हूँ
कुएँ की जगत पर
पहली बार कदम मैंने ही रखा है;
वर्जित फल को आदम हव्वा के बाद
मैंने ही चखा है!
इसलिए संसृति मेरी है
इसे मैं ही जानता हूँ।
मुझे यह कहने में न कोई झिझक है,
ना शर्म कि
तुम जिसे पहेली समझ ढूंढते रहे हल
मैं ही हूँ वह मर्म!

मैं तुममे नहीं हूँ

और तुम मुझमें नहीं।
मिलते-जुलते किसी चेहरे के कारण
तुम्हे मुझे जानने की भ्रांति है,
इस सच का उद्घाटन
न तो कोई आश्चर्य है, न क्रांति है।
मैं तुम्हे बहुत कम जानता हूँ
फिर भी किसी अज्ञात सहानुभूति से
कोरे पन्ने रगने को कलम थामी है।
भूलना मत, यह एहसान कर रहा हूँ
अकेला होकर भी मैं तुम्हारे लिए जिया
और अब सच कहकर मर रहा हूँ!

मेरी आत्मकथा वास्तव में आत्महत्या है!
जिसने भी सच कहा,
सच को बहुत सहा है।
फिर मेरा सच
युग के सारे वर्गीकृत सत्यों से
अलग भी है, भयानक भी!
तुम चाहे इसे कहानी मानना
चाहे टुकडों में बटा उपन्यास
कयास ये कि शायद तुम्हें मुझमें
कोई दिलचस्पी हो;
ठीक वैसी, जैसी मैंने तुममें रखी।
तो मैं——कपडे उतार दूं?
तुमने नंगे नहीं देखे
चाहे तुम सब हो।

नंगा कभी अश्लील नहीं होता,
श्लील-अश्लील कपडो के बाद शुरू होता है।
चलो साहस जुटा लो
तुम आत्मकथा पढ़ने जा रहे हो!
आत्म की कथा।
आत्म— जो नंगा है,
आत्म— जो घिनौना है,
आत्म— जो तुम्हें केवल अकेले में स्वीकार होगा।
मैं अकेला हूँ इसलिए
मुझे कोई खौफ़ नहीं है;
मुझ पर तुम्हारे 'एक्ट' लागू नहीं होते!

सुनो!
आत्मकथा का पहला अध्याय
सिर्फ परवशता की कहानी है,
जिसे मैंने दूसरों के कन्धों पर
खेल-खेल झूठ-मूठ में बिताया।
तब मुझे वो तमाम झांसे दिये गये
जिससे मुझे तुम सबके
साथ होने का वहम् हुआ।
मुझे नहीं बताया गया कि
मैं सिर्फ साथ रहता हूँ।

पहले ही अध्याय में कुछ सूत्र हैं अन्विति के
जिनसे
परिशिष्ट तक निवार्हा गया है।
बरगलाने का क्रम

बीच के चेप्टर हैं।
तुम्हे दिक्कत तो होगी
पर शायद तुम
अपनी जिज्ञासा के बल से सह लो,
कहीं कहीं तुम मुझे
असमाजी भी कह लो।
तुम युग में रहते हो इसलिए।
तुम कुएँ में रहते हो इसलिए।
मैं पहला दु साहसी हूँ,
कुएँ की जगत पर कदम रखने वाला।

पुनश्च—
जरूरी है आभार जताना भी,
जो वजह बने आत्मकथा की, उनके प्रति।
मेरे पिता ने लिखवाया शुरुआती पन्ना
और पत्नी ने आखिरी।

भाईयों ने दूर तक ढोया है इसे
और पाण्डुलिपि बार बार पढी है मित्रो ने।
सशोधन तो हुए नहीं पर—
त्रुटियों के लिए क्षमा याचना नहीं है
मैं सिर्फ आत्म का जिम्मेदार हूँ,
कथा का नहीं!

•

# किरकिरी

चादर
टांक दो ना।
ढांक ले
कुछ पल को
अपना नग्नाता जिस्म!
कभी यहां से
कभी वहां से
कुछ-कुछ झांकता
दूधिया जिस्म
किरकरी है
काली— बडी खूंखार ऑखो की।
बदन पर
काला धब्बा पड़ ही जाए
इससे पहले
एक काली सी चादर ओढ
मुझे
इस बदनाम बस्ती मे
रात गुजार देनी है!

•

## तर्क और संस्कार

भीतर को दिये गये
तर्कों का उत्तर
संस्कारों की करुण चुप्पी है!
चुप्पी के माने मान लेना नहीं है,
सिर्फ झुक जाना है।

सस्कारो का कोई आकार नहीं है।
कोई भी आकार लेने का अवकाश
अपने ही प्रकाश पुंज से
पहले से हारी हुई लडाई है!
आकार सिर्फ प्रकाश के कोण हैं;
अपने हीं प्रकाश के कोण नहीं होते।
तर्क की बनावट और
संस्कार की बुनावट मे बुनियादी फर्क है,
सपने देखने और
सपने चुरा ले जाने जैसा फर्क,
...कि जिसमें तर्क के पास,
सारी शहादते हैं,
सारी गवाहियां हैं!
सस्कार तो अभियुक्त हैं।
सच के हक मे लडते,
तर्कहीन, चुप्प लेकिन वाचाल अभियुक्त।
पक्षद्रोही गवाह सामने खडे
मुँह बनाते हैं
और तर्क एक के बाद एक
अपने गठ-बन्ध खोलता है,
तर्क की बनावट
गठीली है,
पर संस्कार की बुनावट,
मजबूत है, बेशक लचीली है।



# साँप और आदमी

भीतर जागा साँप!
फुत्कारा– जहर उगला,
भीतर सब 'नीला' हो गया!
आँखों पर, पलकों में
कालिख उतर आई,
ज़ुबान पर पहले से कहीं ज्यादा
मिठास आ गई!
भीतर फैलता ज़हर
मीठा लगने लगा,
आदमी शनैः शनै मरने
लगा,
साँप शनैः शनैः बढ़ने लगा!

•

## सम्बन्ध गुनगुने

सम्बन्धो की गरमाहट में
धीरे-धीरे,
ठण्डे दिमाग से– सोचने की
ठण्डाई घुलती चली गई।
भविष्य और सम्भावनाओं का
वर्तमानी परिणाम
घेरता चला गया।

धीरे धीरे
उसकी पीठ पर
गर्दन के ठीक नीचे
एक बडा छेद हो गया।
छेद के किनारो की मिट्टी
भुरभुरी थी, भुरती रही–भुरती रही।
कि जैसे– कोई

सोचने के बहाने
हाथो को गर्दन पर लपेटे
..और दिमाग मे हाथ डालकर
नये से नये तर्क ढूंढ लाये।

तर्क– कि जिनमे
सवेदनाओ का स्पर्श नहीं,
बहस दर बहस के
इकतरफा निष्कर्ष हों।
यू चुपचाप आस्थायें बदल गई।
भाप कब ठण्डी हुई
अहसास तक न हुआ
हवा खुश्क है और
मौसम हमेशा की तरह–।

कि अब बहुत देर तक
हवा एक सी रहेगी जिसमे
सवेदनाओं के साथ
जिया नहीं जा सकता।

ना ठण्डे–ना गरम
सम्बन्ध गुनगुने हो गये हैं
हाँ, कि
सम्बन्ध गुनगुने हो गये हैं।

•

# अल्प विराम !

मेरे बूढ़े तर्क,
तुम्हारे जवान तर्कों के सामने,
बरसों से डटे है, खड़े हैं।
यह शास्त्रार्थ नहीं है,
जीने के ढंग तय करने के
मापदण्डो की लड़ाई है।
तुम्हारे तर्कों की धमनियो मे ताजा खून है,
मेरे तर्कों का खून
गाढा है, पर अधिक लाल है।
हार तो कौन माने ?
पर मैं सच कहता हूँ,
मेरे तर्कों के पैर थक गये हैं,
युवा हो चाहे, पर तुम्हारे तर्कों को भी
थकान तो हो रही होगी।
चलो न,
दोनों अपने-अपने तर्कों को
थोडी देर बैठने को कहे
और हम भी कुछ पल
साथ-साथ चैन से जी लें।
ध्यान रहे किन्तु, यह हार या जीत नहीं है,
केवल युद्ध विराम है,
बिना शर्त,
जीने का अवकाश पाने को किया गया
युद्ध विराम।

## सब गड्मड्ड

एक तेज गति की बस में,
एक धीमा चलने वाला आदमी,
एक ठहरी हुई सीट पर बैठा,
गति के सारे नियमों की
नाप-तौल करता है।

याद करता है वे तमाम सड़कें,
वे तमाम गलियां
जिन पर शायद आज भी
उकरी हुई हो— उसके पैरो की छाप!
कहाँ-कहाँ चला—?
(कागज निकाला, लिखने लगा)
एक बार, एक जगह की एक लकीर खींची।

कहाँ-कहाँ चूक हो गई—
चूक वाली जगह पर क्रॉस लगाये
क्या-क्या करना है—

भविष्य की संभावनाओ पर गोले बनाये।
लकीरे बहुत थीं,
चूकें बहुत थीं,
गोले बहुत थे।
कहा क्या है—
कुछ समझ न पाया—।
सब घुच्च-मुच्च हो गया।
खीझा—झल्लाया
सारे कागज पर काट-पीटकर
घुच्च-मुच्च को पक्का कर दिया।
कागज हाथ मे लिया
मरोड़ा-झंझोड़ा और
गेद सी बनाकर हवा मे उछाल दिया।
सब गड़बड़
सब उल्टा-पुल्टा।

चलो दुबारा लिखते हैं— उसने सोचा
एक नये कागज पर— नये सिरे से।
(मगर नहीं लिखा, बस सोचा)
कहीं कभी इसी तरह
मैंने भी नहीं लिखा, बस सोचा।
क्या तुमने नहीं सोचा?
और तुमने?
सच कहना
क्या तुमने नहीं सोचा?



## अपील

काली, निर्मम सी दीखती
कठोर चट्टानों की परतों
के नीचे
कहीं है तो सही
कोई 'सोता'— पानी का।

पानी— जो शीतल है
पानी— जो समम है
पानी— जो नहीं जानता
भेद
कर्मी-अकर्मी में,
सहज ही हो जाता है— तद्गुण।
प्यास
चाहे देवता की हो या
राक्षस की
महज एक प्रश्न है— छोटा सा
कि जिसका उत्तर
वह सदियो से जानता है।
आकाश के न्यायाधीशो ने

फैसला सुनाया है
चट्टान की बदसूरती के
खिलाफ,
चट्टान की कठोरता के
विरुद्ध।
मुझे आपत्ति है,
मुझे बार-बार आपत्ति है।
मेरे नेही, मेरे मित्र।
चट्टान की परतो को
उघाडने का धैर्य
रखकर—
मैं
पानी के होने के पक्ष मे
फैसले पर
पुनर्विचार की अपील करता हूँ।
वाद-प्रतिवाद
चट्टान के टूटने तक हैं

इसलिए—अपील है मेरी
कि अब चर्चा
चट्टान की बदसूरती
और कठोरता पर नहीं
पानी के शीतल स्पर्श पर
होनी चाहिए।

•

# ठहाके !

ठहाके,
खाली जमीन हैं कि
कि जो इसमें बोयेगे
वही उग आयेगा,
दूर-दूर तक।
किसने बीज डाला और
कौन काटेगा फसल,
ये प्रश्न हवा हो जायेगा।

कि ठहाके हवा हैं,
जिसमें तैरते रहते हैं
हजारों–लाखों सवाल,
हजारों–लाखो जवाब!
कौन इन सवालो को, इन
जवाबों को
आवाज देगा कि
ये सवाल बेमानी है।

कि ठहाके आवाज़ हैं,
इन्हे हँसना है कि रोना,
ये शून्य से कहीं तय होता है,
यूं क्रमश शून्य होते चले जाते हैं
ठहाके।

कि ठहाके शून्य हैं,
गणना को शुरु करेंगे,
गणना को खत्म करेंगे,
फिर से खाली हो जायेंगे, ठहाके!

कि ठहाके खाली सफेद कागज हैं,
इन पर महाभारत लिखा जायेगा,
कि युद्ध का स्वस्ति पाठ,
ये आपके भीतर से आयेगा।
क्योंकि आप,
जो भीतर है— उसी को वाणी देंगे।
कि ठहाके भीतर से आते हैं,
कि ठहाके ईमानदार होते हैं,
और दौड-दौड कर चारों ओर से
आपके लिए जुटा लाते हैं,
हजार-हजार प्रतिध्वनियां
कि ठहाके आपकी
प्रतिध्वनियां हैं!

•

# ..कि जीवन ठहर न जाये

कि जीवन ठहर न जाये
आओ कुछ करें–
कुछ तो करें–।
शहर के बाहर
उस मोडे के डेरे में
छुपकर बेरिया झडकायें
और बटोरें खट्टे-मिट्ठे बेर।
चलो ना आज
रेल की पटरी पर
'दस्सी' रखकर
गाडी का इतजार करें,
कितनी बड़ी हो जाती है दस्सी
गाडी के नीचे आकर।

चलो तो–
झोली मे भर ले
छोटे बड़े कंकर और ठीकरियां,
चुंगी के पास वाले जोहडे मे
ठीकरियों से पानी मे थालिया बनायें,
छोटी-बडी थालियां।
थालियों मे भर भर सिंघाडे निकाले।
छप्-छप् पैर चलाकर
जोहडे मे 'अन्दर-बाहर' खेलें।

या कि—
गत्ते से काटें बडे-बडे सींग;
काली स्याही में रंगकर
सींग लगाकर
उस मोटू को डरायें।
कैसे फुदकता है मोटू— सींग देखकर!

कितना कुछ पडा है करने को।
अखबारों से फोटूऐं काट काटकर
बडे सारे गत्ते पर चिपकाना
धागे को स्याही में डुबोकर
कॉपी मे 'फस्स' से चलाना
और उकेरना
पंख, तितली या बिल्ली का मुँह!

चोर-सिपाही, 'पोषम पा भई पोषम पा' खेले
कितने दिन गुजर गये।
चलो ना— कुछ करें
कहीं से भी सही— शुरू तो करें
..कि जीवन ठहर न जाये
चलो कुछ करें!

•

## बिन्दू और वृत्त

फैलो।
दूर-दूर तक
कागज के हाशिये की
सारी सीमाओं को
नकार कर, क्योंकि
रेखाओं के ताने-बाने
जड़ से उखाड कर
फैलने वाला
परिधियों को जीतता हुआ
विशाल वृत्त बन जाता है,
भीतर ही भीतर
सिकुडने वाला
बस 'बिन्दु' रह जाता है!

●

# दिशा

दौडना है।
दौडना जरूरी ही नहीं
नियति भी
है हमारी,
लेकिन रुको!
सोचो
आज तक दौडे,
क्या मिला ?
मैं सोचता हूँ
हम दौडें
फिर से तेज
दौडें
पर दिशा बदल लें!

•

## स-चेत स्वीकार

ओ प्रियतमा!
तुम्हारे चेहरे पर गहराती झाइयां
तुम्हारे गुजरे हुए कल मे
झेली हुई धूप के निशान हैं।
सूरज की एक एक किरण से
रोशनी के लिए
कितना लडी हो तुम!
—और तब से लगातार
उकरता रहा तुम्हारा इतिहास;
चेहरे के सुनहरी पृष्ठ पर।
इन्हे छिपाओ मत प्रिय,
दुपट्टे से ढंकने की
कोशिश न करो।

मेरी प्रियतमा,
मैं तुम्हें
तुम्हारे पूरे अतीत सहित
स्वीकार करता हूं!

•

## दिशा

# तुलसी सरनाम गुलाम है...

## लोग

तुलसी महान् है
शत्-शत् बार धन्य है,
वह राम नाम का गुलाम।
गुलामी राम नाम की
बेहतर है– बहुत बेहतर है
संसार की सारी
स्वतंत्रताओ से।
"हरि अनंत–हरि कथा अनता
तुलसि कहहिं, सुनहिं सब संता"

## रत्ना

तुम अंधे हो गये हो प्रिय !
कैसा नेह है तुम्हारा
विवेक का अश तक नहीं ?
नेह और वह भी देह से ?
धिक् है ऐसा प्रेम
धिक् है प्रिय–
तुम्हें प्रियतम कहते भी
होती है लज्जा,
जिसके नेह का केन्द्र हो गये हैं
हाड-अस्थि, मांस-मज्जा।

# तानाशाह

तुमने कहा, क–से कबूतर!
मैने कबूतर रटा
तुमने कहा, क–से कविता
मैने कविता कहा।
हँसता देख– तुमने कहा
बहुत उदास हो ? मैं रो दिया।
क्षुब्ध चेहरे पर नजरें गड़ा
तुम बोलीं आज बहुत खुश हो!
मैं हँस दिया।
तुमने चलो कहा– मै चला
रुको कहा– मैं रुका।
तुम कहती हो,
पुरुष सिर्फ अधिकार चाहता है;
'तुम भी तानाशाह हो।'
मुझे कुछ पता नहीं,
मैं क्या हूँ– क्या नहीं।
इससे पहले कि मैं
तुम्हारे मिटने के आदेश पर
मिट जाऊँ– मुझे बता तो दो
ये तानाशाह क्या होता है ?

•

# तुलसी सरनाम गुलाम है...

## लोग

तुलसी महान् है
शत्-शत् बार धन्य है,
वह राम नाम का गुलाम!
गुलामी राम नाम की
बेहतर है– बहुत बेहतर है
संसार की सारी
स्वतंत्रताओ से।
"हरि अनंत–हरि कथा अनता
तुलसि कहहिं, सुनहि सब संता"

## रत्ना

तुम अंधे हो गये हो प्रिय!
कैसा नेह है तुम्हारा
विवेक का अंश तक नहीं?
नेह और वह भी देह से?
धिक् है ऐसा प्रेम
धिक् है प्रिय–
तुम्हें प्रियतम कहते भी
होती है लज्जा;
जिसके नेह का केन्द्र हो गये हैं
हाड-अस्थि, मांस-मज्जा।

ऐसा ही नेह जो होता
रामपद में तुम्हारा,
पा जाते निर्वाण और
मिट जाता मोह-भ्रम सारा।
अब यूं न तको प्रिय–
जाओ–
श्रीरामपद ही तुम्हारी साधना,
तुम्हारे नेह के प्रतिपाद्य हों
जाओ प्रियतम
राम रटो– राम रटो!

## तुलसी

जाऊंगा प्रिय!
रामपद में नेह धरने
तुम कहती हो तो
भव से तरने
जाऊँगा मैं –।

## लोग

मानस के पृष्ठों में से
रह-रह झांकता रहा
तुलसी का 'रामबोला' मन
'जाकै प्रिय न राम वैदेही'
बरसों गाता रहा वह।
धन्य है उसका पागलपन!
धन्य है तुलसी!
धन्य है रत्ना,
जो गुरू बन गई।

ज्ञान की ज्योति से
जगमगा उठा तुलसी का जीवन
रामनाम मे नहा उठा
तुलसी का मन।

## कवि

मूर्ख हैं सारे लोग!
ऐसा नहीं था तुलसी,
ऐसा नहीं है तुलसी।
तुलसी राम का गुलाम कब था ?
ये सब क्या है ?
सच क्या है, बोलो तुलसी
सच क्या है ?

## तुलसी

हाँ,
सच यही है कवि ।
मैं राम का गुलाम कहा ?
मैं तो रत्ना का ही गुलाम ठहरा।
उसने कहा राम रटो
मैंने राम रटा—।
वह कहती कबूतर रटो,
मैं कबूतर रटता।
राम हो या कबूतर
तुलसी को रटना है—
क्योंकि
तुलसी रत्ना का गुलाम था
तुलसी रत्ना का गुलाम है!

•

# बाँह पसारे खड़ा था आकाश

बॉह पसारे
खडा था— आकाश
सिहरता— ठिठुरता
निहारता एकटक।

रह-रहकर
उथल रहा था सागर
फेन उगलता—
हिलोरें लेता
उमडता सतत।

तब—
उस दिन
हम चल रहे थे
साथ-साथ,
पपड़ाये होठों को
थोड़ा-थोडा खोलती

नि शब्द बोलती
जमीन पर।

तुमने
उन्हें देखा
मैंने—
तुम्हें देखा।
तुम चुप्पा गये।

फिर—
हौले से पूछा—
तुमने क्या मांगा ?
तुमने क्या चाहा ?
मैं क्या कहता—

मैंने क्या मांगा ?
मैंने क्या चाहा ?

बाँह पसारे —
खड़ा था आकाश
रह-रहकर उथल रहा था सागर,
नि.शब्द बोलती ज़मीन पर
हम चल रहे थे
साथ-साथ...!

•

# बहुत बहाने थे

बहुत बहाने थे
ठहर जाने को
मैं ठहर सकता था।

कोयल की कूक ने
बांधा
अपने स्वर से,
मोर ने
रास्ता रोक
पंख फैला लिये।
क्रौंचो ने
लम्बी कतार से
बार-बार खींची
लक्ष्मण रेखा।
मैं बहल सकता था।
मैं ठहर सकता था।

दैत्य ने
अट्टहास कर..

बढ़ाये
अपने हजार हजार पंजे !
लम्बे-लम्बे
नाखूनों में
कसमसाने लगी
मेरे– खून की प्यास।
सिंह ने दहाड़कर
गज ने गला फाड़कर
चेताया मुझे,

मैं सिहर सकता था।
मैं ठहर सकता था।
किन्तु
तुम पर थीं मेरी आँखें,
तुम–में था
मेरा प्रेय,
मेरा श्रेय।

रास्ता–
अभी बहुत बाकी था
पगडण्डी
अभी–
बहुत दूर...
जाती थी।

•

## याद : अनुभूति (एक)

कभी अचानक
तुम्हारी याद आ जाने पर
डूबने लगता है मन,
जैसे ठहरे पानी में पत्थर।
तुम्हारी स्मृति का पल
दहलीज पर खड़ा रखता है मुझे:
कि दरवाजे के अगले रुख का
किसी को क्या पता

आधा खुला है— आधा बंद है।
यूं कि जैसे
ये मेरी पराजय के क्षण हैं।
उढ़के दरवाजों से झाक भर लेना—
बाहर को
उत्सुकता से—
मेरे टूट जाने की क्रिया का हिस्सा है
तब लपक कर दौड़ता हूँ भीतर—
कमरे मे
मद्धम बल्ब की रोशनी में
टटोलता हूँ एलबम,
जिसमें क्रम से लगी हैं
तुम्हारी तस्वीरें।
देखता हूँ— तुम्हारा चेहरा
सन गया है ओस से
और कमरे में घुसपैठ
करने लगा है
बाहर का बेरहम कुहरा।

यूं ही
तुम्हारी याद आ जाने पर
कुहरे में गुम होने लगता है दरवाज़ा
और खोने लगती हैं
बाहर निकलने की
सारी दिशायें।

•

# याद : अनुभूति (दो)

शाम
गो— अकेली, उदास
भोली, गुडिया सी।
पनियायी आँखों से
ताकती रहती— आकाश।
जंगल सा घना
दूर तक फैला आकाश।
वह खोयी-खोयी सी
खोने लगती
जंगल की अनदेखी पगडण्डियों में।
अचानक
किसी 'पल' की ओट से
घात लगाकर कूदता
अतीत का तेंदुआ
और— आँखों ही आँखों में
पी जाता
उसकी नरमाई सांसें।
हर सुबह
सूरज—
बीनता— सूखी लकड़ियां
तेरे— मेरे— उसके
घर से।

•

## पुनर्गठन

सन्दर्भों से कटा हुआ
एक नितांत फीका स्वाद
जीभ पर।
नथुनों में चढती
रेतीली गन्ध,
और
किरचते कणों मे
मेरा– तुम्हारा– हमारा
वर्तमान खोजते हुए
एक उकताहट है!
एक अस्वस्ति भरी
उकताहट,
सम्बन्धों का पुनर्गठन
एक यातना है,
सिर्फ एक यातना,
तनी हुई रस्सी की मानिंद।
कुछ तुमसे,
कुछ मुझसे
खिंची हुई रस्सी!

•

## स्पर्श

तुमने लौ को छुआ
और वह माणिक बन गई !
बेशुमार मनके

तुम्हारी मुट्ठी में
सिमटते चले गये।
मुझे बहुत बाद में
पता चला कि
दरअसल
लौ से—
तुम्हारे हाथ जल गये थे
और तुमने
जले पोर मुझसे छिपाने को
मुट्ठी बन्द कर ली थी।

तुमने उस दिन
बहुत जोर से
एक पत्थर उछाला
आकाश की तरफ।
यह तुम्हारे स्पर्श की नियति थी
या उस पत्थर की,
वह हवा में ही
फूल बन गया
बहुत देर बाद
जब वह पत्थर नीचे गिरा
उस पर
तुम्हारे खून के धब्बे थे।

•

## रीढ़ की हड्डी

तुम
कमजोर होने के
बहाने तलाशते हो।
तुम
झुककर चलते हो
अच्छा लगता है,
पर
तुम्हें यह तो पता होगा,
तुम्हारे भी
रीढ़ की हड्डी है।

•

# काई तोड़ने का मंत्र

तुम कहते हो
तो मान लेता हूँ कि
वक्त अब तुम्हारे लिए
बहती नदी नहीं रहा,
ठहरकर कच्चे तटों वाला
पोखर हो गया है।
—और तुम किनारे बैठे,
विवश, लगातार
इसे गंदलाते हुए देख रहे हो।
मित्र!
बेशक, तुम्हारे पास
गैंती-कस्सी नहीं।
तट को तोड़,
धारा बहा ले जाने का
रास्ता भी नहीं,
पर अरे बेवकूफ!
किनारे से एक छोटा सा
ककर उठाकर तो फैंक दो।
गंदलाते पानी की
काई तोडने का मंत्र
कोई तुम्हें— सिखाने नहीं आयेगा।

•

# एक बूंद के लिए

तुम चाहते हो
ढेर से बादल आयें
और तुम्हारे हहराते—
चीत्कारते खेतो पर
टूटकर बरस जायें,
और तुम
खड़े देखते रहो कि

वर्षा मे मोर
कैसा सुन्दर नाचता है!
नहीं मित्र
बादल यूं नहीं बरसते।
जाने कितनी तपिश सहकर
पानी को
भाप होना होता है,
फिर ठण्ड मे जमकर
बार-बार टकराना होता है
किसी निर्मम पहाड से।
पानी की एक बूंद के लिए
आग का पूरा दरिया
पीना पडता है
मित्र!
बादल
तुम्हारी आँख मे
मोरपंखी स्वपन नहीं
वर्षा के पहले की
घुटन और उमस
देखना चाहते हैं!

•

## संभावना

सत्ता की सीढियो पर
सदियो से औंधा सिर किए,
माथा नवाये,
*टका दो टका जिन्दगी मांगते*
बिन मांगी मौत जी रहे हो साथी !
मदमस्त हाथी,
क्षण-प्रतिक्षण आते जा रहे हैं,
तुम्हारे करीबतर !
बन्द आँखो में बसी,
बासी सपनो की टूटी तस्वीरें
खूंटी से उतार कर,

एक पल को
तिनका भर सिर उठाकर
आँखे खोल दो।
हाथी के पाँव के तलवों पर
शायद
तुम्हारी मौत नहीं
जिन्दगी की इबारत लिखी हो।
शायद इसी इबारत को पढकर
तुममे जीने की चाह जाग जाये,
शायद तुम्हारी मौत
हाथी के पाँवों तले
कुचलकर नहीं,
हाथी से लडते हुए होनी हो,
या कि इस लड़ाई में
हाथी को ही हार जाना हो।
या कि— शायद
इसी हाथी पर बैठकर
तुम्हे सत्ता की सीढियों पर
चढ जाना हो,
शायद— शायद ही सही,
तुम एक बार,
एक पल को ही सही
सभावना मे सिर तो उठाओ!

•

# इतिहासखोर

कौंधते शीर्षकों के बीच
साल दर साल
अब एक और साल
निगल गया
वक्तखोर इतिहास!
पर— इतिहासखोर आदमी
देता रहा भौंपूई नारे,
करता रहा
युधिष्ठिरी सत्य वाले
अजगरी वादे!
और भूख—
सतपीढ़िये सेठ सी
बोरगत के बहाने
फैलाती गयी अपना साम्राज्य!
हवा में—
कम होती सांसों की
उलटी गिनती गिनते रहे
वर्गीकृत विद्वान।
काले भैंस जैसे बडे बड़े
शब्दों से लिखे गये
मसीहाई पोस्टर।

ओ मसीहा।
ओ साथी।
क्रान्ति आयात नहीं की जाती।
उलट जरा इतिहास के पन्ने
और देख–
तेरी चटोरी जीभ ने
कितने चटखारे ले लेकर
चट कर दिये सुनहरी दिन।
किस सुबह की बात करता है तू?
अब– किसकी इंतजार में है तू?
बीतते जा रहे हैं
साल दर साल–।
जो होना है– आज होना है।
शर्त हटा दे मित्र–
कि ये तब करूगा
और पूछ अपने आप से
कब करूंगा?
वृद्ध होता जा रहा है समय।
छितराये पांखो में अब
नहीं बचा
एक भी काला रोआं।
यदि निगल गया आज को भी
वक्तखोर इतिहास– तब?
बोल रे!
अब नहीं तो कब?

•

## दधिची

तुमने तो
अस्थियों का दान देकर
परम्परा आगे बढाई,
इतिहास दुहरा दिया
और दिखा दिया कि
जब-जब वृत्तासुर घटेगा





दधीचि मर नहीं गए।
पर भोले ऋषि,
कड़वा कहू तो मूर्ख दधीचि,
तुम्हें दान देने का
सलीका नहीं आया — ।
याचक का चेहरा पढ़ना
सीखो भले आदमी।
आओ,
धुधलके के पार की
वे छायायें देखो ।
विशाल छाया वृत्तासुर है
और अदनी छाया देवेन्द्र।
दोनो के मुख पर उपहास।
तुम्हारी अस्थियों से बना है— चषक,
जिसमें
तुम्हारे रक्त से मिला
मदिरा का जाम उफन रहा है
सुर-असुर के मध्य
सधि-पत्र पर
तुम्हारी अस्थि की कलम से
हुए हस्ताक्षर
सदियां बॉचेगी और
तुम्हे —
मूर्ख कहेगी।



# शेर की कहानी

नाखून मत काटो।
सुनो,
मैं तुम्हें
उस शेर की कहानी सुनाता हूँ —
जिसके पंजे घिस गये थे,
और ——!
वह कहानी
मुझे तब भी अच्छी नहीं लगी
आज भी नहीं लगती ।
सुनो,
नाखून बढ़ने दो।
मुझे उस कहानी का
अंत पसंद नहीं;
मैं तुम्हारे हाथों से
उस कहानी का
अन्त
बदलवाना चाहता हूँ!

•

## काली नायिका

..और अब
जबकि मैंने अपनी नायिका के
होठों पर रंगी लिपस्टिक— पोंछ दी है,
उसके काले ओंठ
सुन्दर ना सही— पर सच्चे तो हैं!
उसके मेंहदी रंगे हाथों से
कहीं अच्छे हैं,
उसके खुरदरे, कटे-फटे, कुरूप हाथ,
जिनमे साफ देखता हूँ मैं
सुन्दरता के मापदण्डों को
बदल डालने के मजबूत संकल्प!
मैं— जबकि कलम पकड़े
निठल्ला हो बैठा हूँ
मेरी नायिका— कस्सी-फावड़ा थामे
मुझे सिखा रही है
कविता रचना नहीं,
कविता उपजाना
और लिख जाना,
सुनहरी अक्षरों का नहीं,
सुनहरी दानों का इतिहास!

•

# खिलाफ़

तुम्हारा मत,
तुम्हारे वाक्य,
थपथपायी गई मेजो की योजना है।
तुम जो बोले तो
संसद सियारो का जगल हो गई!
तुम अनुमति लेकर
खिलखिलाते हो—
तुम्हारी हँसी मे सबकी सहमति है,
सबकी हामी है।
मैं जो चीखा—
अकेला चीखा।
अन्दर की अकेली महाशक्ति से!

मैं तुम्हारी योजनाओ के
दस्तावेज फाडता हूँ
तुम्हारी व्यवस्था के विधान पर
पूरी घृणा से थूकता हूँ।
मैं अल्पमत हूँ,
इसलिए मैं तुम्हारे
लोकतत्र का
दुर्दान्त हत्यारा हूँ–
मुझे
बहुमत के फैसले की
खिलाफत का अर्थ
ठीक से मालूम है
और मैं–
तुम्हारे शस्त्रागार की
अनदीख ऊँचाई से
परिचित हूँ,
फिर भी–
ओ मसीहा– ओ।
बोल तेरे भीड़तंत्री भडभूंजों से
भून डालें मुझे .
मैं सरेआम
तुमसे बगावत का
ऐलान करता हूँ!

('पाश' की स्मृति में)



## राग विद्रोह

हाँ,
मेरी वाणी में विद्रोह का
स्वर है,
असभ्यता की झलक भी!
पर किसी भी अशिष्टता के लिए
जिम्मेदार नहीं हूँ मैं।
मैं उन स्वरों का प्रतिनिधि हूँ,
जिन्हें नींव में दबाकर,
खड़ा किया गया है
सभ्य शब्दों का विशाल शब्द कोश!
नहीं है— तो— नहीं है
इस आवाज में

संगीत का कोई सुर या रिद्म
पर इससे मर नहीं जाती मेरी वाणी,
न ही मरता है
भीतर का समवेत गान।
सदियों से—
सुरों से वंचित शब्द,
जब पंक्तियों का क्रम
और बरसों की घुटन तोडकर
पत्थरों की तरह
खड़खड़ाते निकलेंगे
तो राग कल्याण नहीं उभरेगा,
चिल्लाहट उभरेगी।
मेरे साथी, मेरे मसीहा!
तुम इन स्वरों को बेशक
अपने सगीत शास्त्र मे
जगह मत देना,
पर राग विद्रोह की
इस बेढब चिल्लाहट के पीछे छिपे,
समवेत गान के संगीत को
नकारना मत!
याद रखना,
संगीत वहीं खत्म नहीं हो जाता,
जितना और जहां तक—
तुम सीख गये हो।

•

## तुमसे आगे-तुमसे ज्यादा

तुम्हारे पास
सिर्फ एक चिंगारी थी–
मेरे पास लौ की एक पूरी लपट।
मैं तुमसे घना था!
मैं तुमसे बड़ा था!
मैं तुमसे ज्यादा था!
मैं तुमसे आगे था!

तुमने चिंगारी दिखा,
मशाल जला ली,
मैंने लपट से पूरे के पूरे
जगल मे आग लगा दी।

तुम मसीहा कहलाये,
मैं सिरफिरा।

मैं आज भी तुमसे घना हूँ!
मैं आज भी तुमसे बड़ा हूँ!
मैं आज भी तुमसे ज्यादा हूँ!
मैं आज भी तुमसे आगे हूँ!

•

# मैं और सवेरा

अभी भटकने दो
रात बहुत बाकी है,
सड़कें भी बहुत खाली —।
देखना है—
कदम ही थक जाते हैं
या कि
रात ही धुंधवा कर
दम तोड देती है।
जो भी हो
ये तय है कि मैं
जब भी
घर पहुँचूंगा
सवेरा मेरे स्वागत को
चौखट पे होगा।

•

# कोरी कविता

शब्द–शब्द–शब्द
तुम्हारे शब्द– मेरे शब्द
लोगों के शब्द
गुत्थम-गुत्था हो
उलझे रहते हैं।
कभी कुछ नहीं,
कभी कुछ नया नहीं;
हर बार
वही शब्द जाल,
वही कोरी
आडम्बरी कविता!
कभी मेरी– कभी तुम्हारी,
कभी लोगों की –!

•

## बोझमुक्त

चारों ओर
बिखरी विरक्ति।
रेत-कणों के से अ-मिल एहसास
तुम्हें सालते हैं।
झबरीले पेडो का
कंकरीला होना
दुखता है तुम्हें।
कितनी ही देर तक
बस मे बैठे हुए
सहयात्री से लेकर
विश्व के गहरे-गहरे दर्शन
छान डालते हो तुम
और इनसे— मिलती है तुम्हें
एक कविता।
फिर तुम्हारे चारों ओर
क्या हो रहा है
तुम्हें क्या लेना —?
(तुम और तुम्हारी कविता!)

•

## नपुंसक

सच की लौ भभकती,
चेहरा, गरम— तपता
आँखों से झांकती
लौ की लपटें,
बाल धुआं-धुआं से उड़ते,
सांसें भाप होती,
हाथ-पैर जलते— कहीं ना टिकते,
भीतर की यह आग
मुँह तक आकर
तालू जला डालती,
होठों पर फफोले पड़ते
...और

एक क्रान्तिकारी कवि
बार-बार कहता/लिखता
कविता-कविता-कविता!

..उसने जलती आँखों से देखा
लगा कि वह
सारा का सारा दृश्य
जला डालेगा
हाथो की मुट्ठियां भिंची
भौहें तन गईं,
नसों में फुफकारें होने लगीं
लगा कि ...
शिव का तीसरा नेत्र
बस खुलने को है!
सृष्टि कांप उठी
त्राहि- माम् त्राहि-माम् त्राहि-माम्!
पर कुछ नहीं,
कुछ भी नहीं
उसने देखा—
देखा और घर चला आया—!
कमरा बन्द कर
कलम उठाई और
एक कविता लिख डाली—!
बस—!

•

## नदी लिख जाती है कविता

कभी बैठे-बिठाये
या रात-ब-रात
उचटी नींद में
यूं ही हो जाती है कविता!

एक लम्बी चुप
और सामने बैठे संत की
आँखों से झांककर
मुस्कराती रहती है कविता।
एक ईमानदार ठहाका भी
कम नहीं है कविता से!

याद आ जाने भर से
कविता हो जाती है।

जहाँ कहीं से भी
गुजरती है नदी
वहीं रच जाती है— महाकाव्य।
गुलमोहर की पत्तियो से ही

बनते हैं छन्द,
नीली चिडिया के पखो से ही
झरते हैं नन्हे-नन्हें अलंकार।

कविता
ऑफिस की फाईल का
निपटान नहीं है कि
कवि हाजरी भर भरदे।
ऑफिस की कॉलबेल और
कविता में
फर्क इसी से है कि
कवि अफसर नहीं है।

वह तो
शीशम या कीकर की छांव में छांवता
फक्कड फकीर है,
जो बैठे-खडे,
सोते जागते
निहारता है पेड,
चुनता है पत्तियां
और कभी चुप रहकर
कभी ठहाको से
रचता है बेशुमार कवितायें
.. बेशुमार कवितायें।

•

## कन्फैशन

हम दोनों को विरासत में मिली,
एक सी ईमानदारियां,
एक सी चालाकिया।
बरसों ढोते रहे हम,
अपने अपने हिस्से की,
ईमानदारियां— चालाकियां।

आज हम दो नेक बन्दे,
एक वसीयत के दो उतराधिकारी,
आमने-सामने बैठे,
हकीकतों को खोलने।

तुमने ईमानदारी से स्वीकार की
अपनी चालाकियां,
और मैंने बड़ी चालाकी से
स्वीकार की अपनी ईमानदारियां!

•

## स–सड़क

सडक
दूर तक फैली हुई
सबके पास– सबके साथ
अकेली, उदास।
जब-जब भी
अभ्यंतर तपता है और
सिर पर बैठा
आग उगलता है
अहसासों की गरमी का गोला;
बडी मुश्किल से
रोक-थाम पाती है
रोम-रोम गिट्टियो को
बिखरने से–!

पिघल कर,
गाढे आँसू सा चिपचिपाता है
वेदना की जलन में
फुंक कर काला हुआ कोलतार!
नगे पांव चलो तो
महसूस कर लो
सडक के भीतर से उकल आई
ठण्डेपन की भ्रांति को।
एक अकेला यात्री
सडक का साथ पाने को,
उसका दर्द पहचान
हौले-हौले पग रखता है—
पग उठाता है—
पग के उठने के साथ
निकलती सडक की सिसकारी को
सिहर कर सुनता है।
चुपचाप चलता
सडक के तमतमाते चेहरे को
देखता है—
सोचता है कि
आखिर सडक यूं— इस तरह
सबको अपनी छाती पर से
गुजर जाने का
रास्ता क्योंकर दे देती है?

•

## गाँव की बात

शहर की प्रतिक्रिया
या किसी
सर्द अतीत का टुकडा,
रह– रहकर
मेरे सपनों में अक्सर
बर्फ की सिलो
के बीच लेटा
एक मुर्दा
नजर आता है;
फिर भी
मैं –
अपने छूटे हुए
गाँव की बात
कभी नहीं सोचता !

•

## नाएग्राः महसूसने के दो पल

### एक

(जलधारा)

नहीं पता,
धरती में कितना गहरा गड्ढा है,
या कि गहरे गड्ढे का ही
नाम धरती है
इसमें जितना भी उंडेलो,
भरता नहीं है।
जल तो करुणा है,
मन भरकर मनो-मन उंडेली
अकारण करुणा!

कितनी वेगवान!
दृष्टि की अपनी सीमा है,
असीम की गति को
नाप नहीं पाती,
स्थिर साटन के थान सी
खुल-बिछ जाती है–
वेगवती धारा;
गति भी जड़ लगती है।
इस से गढते हैं हम
नये नियम,
अपनी सीमा को नहीं,
झरने की प्रबल वेग धारा की
स्थिरता को आकते हैं,
कैमरे की उल्टी आँख से
सीधा झाकते हैं,
सौन्दर्य से उपजी वासना की
यही मुक्ति है,
गतिशीलों को जड़ कहना
नये युग की सूक्ति है!

## दो

(मेड ऑफ दि मिस्ट)
हे प्रभो!
अद्‌भुत है,
तेरी करुणा का जल!
यूं उमड़ता है सतत– कि

जैसे जल के चन्दोवे से
ढंक लेगा सबको
और अन्तहीन दौड़ में दौडते
डूबते सूरज की सभ्यता को,
अपने सजल उर में
समेट लेगा।
कितनी अद्‌भुत!
कितनी प्रत्यक्ष!
कितनी साक्षात है
तुम्हारी करुणा!
ज्यों-ज्यों निकट से देखूं
स्नेह उमड आये,
स्नेह के सघन उडते
तरल कणों में,
उभरता है एक आकार!
एक भोली, अल्हड
किशोरी का चेहरा,
जिसकी आँखों की गहराई में,
तरल और सरल मन में,
मुस्कराने लगते हो तुम।
और——
भीजे तन-भीजे मन से
घुलने लगता है,
जल में जल।

•

# बिना बहाने-नदी मुहाने

बिना बहाने– नदी मुहाने,
बडी भीड है,
कई अकेले मेरे जैसे,
खडे अकेले सोच रहे हैं,
उनमें मैं हूँ, खडा अकेला
सोच रहा हूँ,
कारण क्या है, वजह तो होगी
कुछ आने की।

नदी अकेली– नदी दुकेली,
नदी स-केलि बहती जाती,
कुछ ना कहती, बहती रहती,
बहती रहती-बहती रहती।
कब से कब तक..?
तब से अब तक
दूर कहीं से ये आती है,
जाने कहाँ बही जाती है
नदी अकेली!

नदी मुहाने कुछ नावें हैं,
घाट बन्धी हैं;

चप्पू भी हैं, रज्जू भी हैं!
शायद नाव चलानी होगी,
धारा बीच ले जानी होगी
हो सकता है ऐसा ही हो,
हो सकता है ऐसा ना हो!
दूऽऽर दूसरे तट पर शायद,
कोई मुझे देखता होगा,
ओ मतवाले, आजा–आजा!
ऐसा कहकर टेरता होगा।
शायद मुझे वहां जाना है,
यह तट छोड़, वह पाना है,
दूर दूसरा तट है शायद।

गड्मड्ड है कुछ साफ़ नहीं है,
यह तट, वह तट और ये धारा,
चप्पू-रज्जु, नाव-किनारा!
एक अकेला, कई अकेले,
नदी अकेली– नदी दुकेली!
सोच रहे हैं, देख रहे हैं,
यह बहती है, चुप रहती है!
मैं भी बह लूं– या थिर रह लूं,
वजह तो होगी कुछ आने की
बिना बहाने–नदी मुहाने
बडी भीड है —!

•

# लहर की नमी

एक नन्ही सी लहर उठी,
सूरज की पहली किरण
सी चमकी।
मासूम, भोली, अन्जान,
अल्हड़।
मैंने अपना सा जान
हाथ बढाया, हौले से छुआ..
कि वह लहर..
सकुचाई— शरमाई और
पूरी मासूमियत के साथ
शात धारा की चूनर ओढ
धीमे-धीमे चल दी,
नवोढा सी।
मेरे हाथो में
उसके एहसासों की नमी है बस
वरना
यू खामोश सागर को देख
विश्वास करना कठिन है कि
इसमें कोई
लहर उठी भी थी।

•

## सागर-पुत्र

उफनते सागर की
किसी छोटी सी लहर से
जन्मे थे तुम ।
सागर ने अपनी सारी नमी
सारा प्रेम
आकण्ठ भर दिया तुम में ।
उछाल लेती 'कश्ती' की तरह
ज्वारो पर
अठखेलिया करते तुम
जवान हुए ।
सागर की हलचल मे डोलती
सीपियों से छिटके
उजले मोतियों की चमक
तुम्हारे चेहरे में
तुम्हारी आँखो में झाकती रही।
सब समझे कि
शायद तुम
दूर रेत पर पटके गए हो
किसी शंख/घोघे के से ।
लहर का तत्व,
सागर की आर्द्रता

तुम्हारे भीतर से सूख गई
और तुम
किसी किनारे खेलते
बालक के से
मग्न हो— मस्त हो
इस दुनिया में ।
पर आज
तुमने अपने भीतर की
सारी तड़प— सारी तरंगों को समेट
उछाल ली तो
सागर उमड़ पड़ा,
लहर का ममत्त्व
छलकने लगा !
तुम्हारा हर अंश
सागर के समांश हो गया ।
ममता के उफान में
सिन्धु उफना, गरजा
और फिर तुमसे
लिपटा, आलिंगनबद्ध हो
चुपचाप
यूं बहने लगा
जैसे कुछ हुआ ही न हो
दूर तक
बहता रहा— बहता रहा !

•

## ओ सागर!

नदियां,
बहकर आती नदियां,
हेल मेलती, खेल खेलती
नदियां।
सागर,
उनसे बना है सागर।
विस्तीर्ण, प्रगाढ़, नीला,

लहरीला सागर।
सुनो सागर!
ओ सागर!
मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।
आओ,
सहज ही लिपट जाओ मुझसे,
अपने नेह के भुजबल मे
आलिंगनबद्ध कर लो।
श्यामल सागर।
मोती और मूंगे के कानों वाले
ओ सागर,
मछली की तड़प लेकर आया हूँ,
लौटा न देना।
सागर,
खामोश सागर!
उदास सागर।
नदियां,
बोलती हैं नदियां,
कहाँ है सागर?
कौन कहे,
कहाँ है सागर।

•

## बतियाती मछलियां

मानसरोवर के ठहरे जल से दूर
जाने कहाँ को
जाने कहाँ के लिए
उड़ान भर रहे हैं, हंस।
आफलक फैले हैं
उनके गोरे पंख।

जिनसे लगातार झर रहे हैं,
सफेद-सफेद रोंअें।
डब्-डब् रो रहे हैं हस,
मानसरोवर से बिछडते।
आँसुओं की हल्की हल्की घोट से
पड जाते हैं
छोटे-छोटे गड्ढे,
पौष की ठण्डाई रातो में
जमकर बर्फ हो गए
मानसरोवर के जल मे!

बतियाती हैं मछलियां
बाहर जकड लिए हैं पौष ने
हवा, पानी और आकाश।
आओ, गहरे मे चले,
शायद तल मे हो कुछ
गरमाई,
बस इतनी कि
जी सकने जितनी,
कि जम ना जाये कहीं,
धमनियों का रक्त,
कहीं मानसरोवर भर न
जाये,
कमलो की जगह,
हमारी दुर्गन्धाती लाशों से!

•

## एक शब्द चित्र

धरती जो माँ,
तो आकाश पिता!
बेहद कामुक, या
बेहद प्रेमी?
हर वक्त झुका रहता
अपनी प्रिया पर,
सुबह-शाम उसकी
इकलौती आँख में,
लाल डोरे तैरते!
सब बच्चे सोये,
सब बच्चे चुपचाप,
सब बच्चे अनजान,
माँ-पिता के ढलती उम्र के
प्रेम से।
पर कोई-कोई बच्चा—शरारती
चुपके से आँखें खोलता,
देखता, हैरान होता
और कविता लिख-लिख
सबको बताता।

•

## तलपट

क्या खोया ?
क्या पाया ?
क्या खोने का डर है,
क्या पाने की चिन्ता है ?
यह तलपट मिलाने का
वक्त नहीं है मित्र,
बस—
आखिरी पृष्ठ पर
हस्ताक्षर करो और चलो,
आने वाले, खाते मिलाते रहेंगे,
खोने-पाने का हिसाब
बनाते रहेंगे !

•

कवि नहीं लिखता कविताएँ
लिखता है आलोचक
आलोचना में होती है कविता
और कविता में कवि ?
तुम लिखो– जीवन
आलोचक कर देगा दहकन
तुम लिखो आग
आलोचक कर देगा क्रांति
बड़ी चीज है आलोचक
कविता से बड़ी होती है उसकी कलम
सात समन्दरों की स्याही पीकर
उनचास पवन के घोड़ों पर सवार
नाप लेती है सातों आसमान
खुशी में हाहाकार
हाहाकार में खुशी
खींचने में समर्थ है वही
कविता के कुएँ से
बड़ा है उसका घड़ा
चाहे तो घड़े का मुहताज हो जाय कुआँ
पिलाए पहले उसे
फिर छके आप
और बचा–खुचा छींट दे
जनता के मुँह पर ।

(समर्थ है वही: रामकुमार कृषक की कविता)

मायामृग नाम मैंने खुद रखा। परिजनों ने नाम दिया था सन्दीप कुमार, जो अब सिर्फ सरकारी रिकॉर्ड में रह गया है।

पहली बार मिलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह नाम काफी अटपटा लगता है। मित्रों का कहना है कि मेरे रहन–सहन के साथ यह नाम मेल नहीं खाता।

मुझे नहीं पता मेरा सही नाम क्या होना चाहिए।

मैं हद दर्जे तक अन्तर्विरोधों से ग्रस्त एक अति–संवेदनशील व्यक्ति हूँ। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में मैंने अपने तमाम अन्तर्विरोधों को पूरी सचाई के साथ प्रकट करने का प्रयास किया है। ये कवितायें ही शायद मेरा कुछ ठीक परिचय दे पाएं।

मेरा सम्पर्क पता है –
मायामृग
5/356, एस. एफ. एस. अग्रवाल फार्म, मानसरोवर,
जयपुर-302020 दूरभाष : 0141-398926